OR

A SHORT HISTORY OF ARORBANSHA

शास्त्रीय प्रमाणों से पूर्ण

तथा

भारतवर्ष के प्राचीन चित्र से विभूषित

निर्माता

पण्डित राधाप्रसाद शास्त्री

संस्कृताध्यापक

डी. ए. वी. कालिज, लाहौर ।

बाम्बे मैशीन प्रैस, लाहौर ।

प्रथमबार १०००] विक्रमाब्द १९६९ [मूल्य ॥)

भूमिका

फरवरी सन् १९११ में अरोड़वंश की एक सभा लाहौर में हुई थी जिसमें लाला दुनीचन्दजी ऐम. ए. ने अपनी वक्तृता में कहा था "कि दायविभाग के मामले में चीफकोर्ट के जज अरोड़ों के विषय में कहते हैं कि यह लोग अपने आपको क्षत्रिय कहा करते हैं, पर यह सन्देह वाली बात है"। इस बात पर विचार करने से प्रतीत होता है कि भारत में हिन्दुओं के अन्दर ऐसी भी जातियें हैं जिनके पूर्वजों के विषय में सन्देह होता है कि वह कौन थे ? ऐसी दशा में इसप्रकार की जातियों को आवश्यक है कि वह अपने पूर्वजों के विषय में दत्तचित्त होकर अन्वेषण करें क्योंकि जैसे पुत्र पिता को जानता है इसीप्रकार प्रत्येक जीवित जाति से आशा कीजाती हैकिवह अपने मूलपुरुष को जानती होगी। आश्चर्य है कि अरोड़ जाति जैसी प्राचीन जाति जिसमें आज लाखों योग्य पुरुष वर्तमान हैं, आज तक अपना ध्यान इस विषय पर बिलकुल नहीं लाती। इन दिनों में वर्णव्यवस्था क्रमशः अवनत होचली है तथापि प्राचीन तथा नवीन, भारतीय तथा विदेशीय इतिहास हमको यह बतलाते हैं कि मूलपुरुष के परिचय से पूर्वजों का उत्तम आदर्श हमारे सामने रहता है और इस आदर्श के द्वारा मनुष्य अपने जीवन को अत्युत्तम बना सक्ता है। कुलशीलादि का अभिमान मनुष्य जीवन में आवश्यकीय है। इस प्रकार के अभिमान से आत्मा में एक अपूर्व शक्ति उत्पन्न होजाती है जोकि मनुष्य की आधि,

व्याधि, आपत्ति तथा विपत्ति आदि प्रत्येक प्रकार की दशा में सहायता कर सक्ती है ॥

ऐसे २ विषयों पर विशेष २ जातियों को ही नहीं किन्तु हिन्दुमात्र को उचित है कि वह अपना ध्यान इन विषयों पर लावें। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास अज्ञान गुहा में पड़ा है इसको प्रकट करने के लिए घोर परिश्रम की आवश्यकता है। मेरा विचार था कि अरोड़ जाति का पूर्ण इतिहास लिखूँ किन्तु कइएक कारणों से मैं अभी उसका संक्षिप्त रूप से प्रकाश करता हूँ। आशा है कि पाठकगण इस पुस्तकको इतिहास की दृष्टि से पढ़ेंगे और अपनी सहमत तथा विरोधी सम्मति को देकर मुझे उत्साहित करेंगे तो थोड़े ही समय के अनन्तर इस विषय का सिद्धान्तग्रन्थ पूर्णरूप से मैं प्रकाशित कर दूंगा ॥

इस विषय की समालोचना के लिये मुझे प्राचीन तथा नवीन कइएक पुस्तकें देखनी पड़ीं। इस विषय पर मोहनलालजी 'श्यामेपोत्रा' ने एक पुस्तक गुरुमुखी में लिखी है जिसका नाम 'तवारिखे जाति अरोड़वंश' है। आपने अरोड़ों की उत्पत्ति के विषय में निम्नलिखित श्लोकों का प्रमाण दिया है—

तादिमं कश्चित् शस्त्रधरं ज्ञात्वापृष्टवान् मुनिसत्तमः।
सत्यं ब्रूहि च कस्त्वं भो क्षत्रियोहमरूट् प्रभो ॥ १ ॥
न मया क्रियते रोषो ब्रह्मवंशे कृतागसि।
ततः प्रभृतिमारभ्य अरोडाः प्रथतां गताः ॥ २ ॥

अर्थ—हाथ में शस्त्र लिये हुए किसी पुरुष को देखकर परशुरामजी बोले कि सच बोलो तुम कौन हो ? महाराज, मैं अरूट्

नाम वाला क्षत्रिय हूँ। पाप करने वाले ब्राह्मणों से भी मैं क्रोध नहीं करता इसीलिए मेरा यह नाम है और तभी से अरोड़े हुए—

आप लिखते हैं कि यह भविष्य पुराण का श्लोक है। परन्तु यह श्लोक भविष्य पुराण में किसी स्थान में नहीं है और नाहीं ऐसे अशुद्ध श्लोक पुराणों में पाये जाते हैं। इसलिये इस प्रमाण को निर्मूल समझना चाहिए॥

इस विचार से कि पाठकगण पुस्तक के विषय को सरलता से समझसकें, प्राचीन भारतवर्ष का लघुचित्र भी पुस्तक में लगा दिया है॥

कार्तिक १९६९

पं० राधाप्रसाद शास्त्री।

पुस्तक मिलने का पता—

ब्रह्मचारी रामरत्नजी,

दीवान रत्नचन्द का बाग,

लाहौर।

या

आत्माराम ऐन्डसन्स,

बुकसेलरस ऐण्ड पब्लिशरस,

अनारकली लाहौर।

अरोड़वंश व्यवस्था

ऐ भारत ! क्या वह सौभाग्य के दिन तुझे अत्यन्त विस्मृत होगये जब कि कवि लोग तेरे प्रभावशाली स्वरूप का वर्णन करते हुए तेरे धार्मिक दशा का वर्णन अधिकतर करते थे। क्या अपने प्राचीन धार्मिक गौरव का ज्ञान तुझे लेशमात्र भी याद न रहा। तेरे कवियों को पूरा २ विश्वास था कि और देशों की भान्ति सामाजिक राजनैतिक और धार्मिक यह तीन दशायें तेरे में अलग अलग नहीं हैं। किन्तु धार्मिक दशा का ही विकाशविशेष राजनैतिक और सामाजिक दशा है। आर्य्य जाति का प्रत्येक कार्य धर्म्म के भाव से व्याप्त था और उसका प्रत्येक विचार धर्म के नींव पर सुदृढ़ था यहां तक कि विदेशियों ने उसके गम्भीर अभिप्राय को न समझते हुए उसकी निन्दा की है कि आर्य जाति को सर्वदा धर्म के ही भाव घेरे रहते हैं। आर्य सन्तान स्नान पान भोजन भ्रमणादि नित्य कर्म में भी धर्म के ही स्वप्न देखते रहते हैं इसलिये उनसे किसी उच्च कार्य की आशा रखना मानों आकाश में किला बनाना है यद्यपि यह शब्द विपक्षियों ने घृणा के भाव से कहे हैं तथापि यह निन्दा नहीं प्रत्युत आर्य जाति की प्रशंसा है। आर्य जाति के लिये धर्म जैसा ईश्वरीय पदार्थ गिरजे आदि किसी विशेष स्थान अथवा अतवार जैसे विशेष दिन का ही विषय नहीं है किन्तु इनका कोई ऐसा कर्त्तव्य किसी दिन या स्थान [illegible] के भाव से न किया जाता हो [illegible] से वह नाना विध कार्यों में

सफलता प्राप्त करते थे। अस्तु, व्यतीत गुणों का कथन व्यर्थ है आज कल्ह तो भारत में कोई ऐसा धर्म प्रचलित नहीं है जिसको हम भारत का धर्म कह सकते हैं। भारत में जितने **मनुष्य** हैं उतने **मन** हैं और जितने **मन** हैं उतने ही **मत** हैं और **मत** को ही आज कल्ह **धर्म** समझा जारहा है। पाठकगण! अब आप स्वयं समझ सक्ते हैं कि जिस देश में सब का मूल कारण धर्म ही है वहां धर्म की अवनति होने पर सामाजिक तथा राजनैतिक दशा कैसी अधोगति को प्राप्त होगी॥

समाज कोई जाति से भिन्न पदार्थ नहीं है किन्तु उसका ही एक रूप विशेष है अतएव जाति के वर्णन में ही सामाजिक दशा का वर्णन स्वयं होजाता है क्योंकि समुदाय के अन्तर्गत ही अवयव हुआ करता है। आर्य जाति का प्राचीन रूप का वर्णन निम्नालिखित वेद मन्त्र से होता है :-

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यःकृत ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ॥ (यजु० अ० ३१।०११)

अर्थ-ब्राह्मण आर्य जाति के मुख, क्षत्रिय हस्त वैश्य जंघा और शूद्र पैर थे॥

यही आर्य जाति का स्वरूप था और इससे विदित होता है कि कोई समय था जब कि यह भी जाति आज कल्ह के समान मृत नहीं प्रत्युत जीवित थी, शरीर के प्रत्येक अङ्ग एक दूसरे के लाभ के लिये प्रयत्न करते हैं इसीप्रकार आर्य जाति के भी प्रत्येक ब्राह्मणादि अङ्ग एक [illegible] प्रयत्न करते थे परन्तु आधुनिक दशा को देखने [illegible]

के प्रत्येक अङ्ग अपने २ कार्य में निमग्न हैं और एक दूसरे के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। ऐसी दशा में कौन कह सक्ता है कि आर्य जाति जीवित है ? वह शरीर जिसके मुख हाथ जंघा पैर आदि अलग २ हों किसप्रकार जीवित रह सक्ता है ? इसतरह विचार करने से तो यही प्रतीत होता है कि आर्य जाति में कुछ भी प्राण नहीं है। परन्तु कुछ ऐसे लक्षण हैं जिनको देखने से यह ज्ञात होता है कि यद्यपि आर्य जाति मर चुकी थी तथापि अब इस में कुछ जान आने लगी है। संग्रह तथा त्याग यह जीवन के दो लक्षण हैं हरे और सूखे वृक्ष में केवल भेद इतना ही है कि हरा वृक्ष अपने वृद्धि के कारणभूत परमाणुओं का संग्रह करता है और प्रतिकूल परमाणुओं का त्याग करता है अतएव वह जीवित रहता है और शुष्क वृक्ष इन गुणों के न होने से निर्जीव होजाता है। आर्य-जाति में यह लक्षण कुछ अंश तक पाए जाते हैं कई एक नवीन सुधारक आर्य जाति के वृद्धि के लिये अन्य जातियों से मनुष्यों का संग्रह कर अपनी जाति में मिला रहे हैं यद्यपि यह लक्षण जीवन के हैं तथापि कुपथ्य अथवा वर्ज-नीय के संग्रह से लाभ तो अलग रहा उल्टा हानि भी हुआ करती है। आर्य जाति बहुत दिनों से रोगी चली आती है आज तक इसके निदान को किसी ने नहीं पहचाना था । यहां तक कि वह मृतप्राय होचुकी थी, अब जब दैव बश इसके रोग के निदान का पता लगा और रोग कुछ दूर होचला तो चूंकि बहुत दिनों से संग्रह बन्द था इसको एक साथ संग्रह की अधिक अभिलाषा हुई बहुत दिनों के बाद रोग से उठने पर मनुष्यों को भी प्रायः अधिक संग्रह अर्थात् भोजन की इच्छा होती है, ऐसी प्रबल इच्छा में वह पथ्यापथ्य का विचार नहीं करते। और उसका

कौन से अरुण इसके प्रधान पुरुष थे क्योंकि पुराण इतिहासों में दो अरुण की चर्चा आती है एक तो अरुण सूर्य के सारथी हुए हैं दूसरे सूर्य वंश में अरुण एक राजा हुए हैं :–

...द्वौ पुत्रौ विनतायास्तुगरुडोऽरुण एवच्च ॥३२॥
तस्माज्जातोऽहमरुणात्सम्पातिश्च ममाग्रजः ।
जटायुरितिमांविद्धिश्येनीपुत्र मरिन्दम ॥ ३३ ॥

(बाल्मीकिय रामायण आरण्य काण्ड सर्ग १४)

अर्थ–जटायु रामचन्द्रजी से कहता है कि विनता के दो पुत्र हुए गरुड़ और अरुण। मैं और मेरा बड़ा भाई सम्पाति अरुण से उत्पन्न हुए हैं ॥

इस श्लोक से प्रतीत होता है, कि अरुण से केवल दो पक्षियों का ही जन्म हुआ मनुष्य का नहीं, आगे पर भी इन दोनों में से जटायु का तो कोई सन्तान ही नहीं था, किन्तु सम्पाति के जो थे वह भी पक्षी ही थे। दूसरा कारण यह है कि पूर्वोक्त पुस्तक में सब जीवों की उत्पत्ति अलग २ दिखाई गई है मनुष्य की उत्पत्ति केवल मनुष्य से ही कही है ॥

......प्रमाणः——मनुर्मनुष्याञ्जनयत्... ।

(बा० आर० कां० सर्ग १४ श्लो० २९)

अरुण की उत्पत्ति विनता से थी मनु से नहीं अतः सम्भव नहीं कि अरुण से मनुष्य पैदा हुए हों ॥

दूसरे अरुण सूर्य वंशीय क्षत्रिय हुए हैं :–

.........त्रसद्दस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत४ । हर्य्यश्वस्तत्सुतस्तस्माद्दरुणोऽथ निबन्धनः ......५ ॥

(श्रीमद्भागवत स्कन्द ९ अ० ७)

पुरुकुत्स राजा सूर्यवंश में से है उनका पुत्र त्रसदस्यु हुआ त्रसदस्यु का पुत्र अनरण्य, अनरण्य का पुत्र हर्य्यश्व, और उसका पुत्र अरुण है ॥

इसप्रकार इस प्रकरण के भागवत के श्लोकों को देखने से प्रतीत होता है कि रामचन्द्रजी से बहुत पीढ़ी पहिले अरुण का जन्म हुआ है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि अरुण सूर्यवंशीय राजा हुए हैं किन्तु अरुण के नाम से आगे वंश की प्रसिद्धि हुई हो इसमें कोई प्रमाण नहीं मिलता, संस्कृत के पुराण इतिहासों में यह शैली पाई जाती है कि प्रत्येक राजा के नाम से वंश की प्रसिद्धि नहीं कीजाती,किसी विशेष२ पराक्रमी पुरुष के नाम से वंशप्रसिद्धि दिखलाई जाती है अथवा जहां वंश का उच्छेद होने लगजाता है और उसके बाद जिसकी उत्पत्ति होती है उसी के नाम से फिर वंश चलता है जैसे रघुवंश में दिलीप के सन्तान नहीं होता था तो गौ की सेवा करके उन्होंने याचना की है कि वह पुत्र मिले जिसके नाम से वंश चले ॥ यथा :-

ततः समानीय स मानितार्थीहस्तौ स्वहस्तार्जित वीरशब्दः । वंशस्यकर्त्तार मनन्तकीर्त्ति सुदक्षिणायां तनयं ययाचे ॥ (रघुवंश सर्ग २ श्लो० ६४)

इसके अनन्तर अतिथियों के सत्कार करनेवाले और अपने हाथों से शूरवीरों के कार्य को कर वीर की उपाधि धारण करनेवाले दिलीप ने हाथ जोड़कर गौ से यह प्रार्थना की कि सुदक्षिणा के गर्भ से ऐसा पुत्र उत्पन्न हो कि जिसके यश का पारावार न हो, और जिसके नाम से आगे पर वंश भी चले ॥

गौ ने दिलीप को वरदान दिया है और रघु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ है इसके आगे जो सन्तान उत्पन्न हुए वह रघु के वंश में होने से राघव कहे जाते हैं। काव्य, इतिहास में राघव शब्द भी मिलता है किन्तु अरुण के नाम से वंश की प्रसिद्धि हुई हो इसकी कथा किसी पुराण या दूसरे संस्कृत के ग्रन्थ में नहीं पाई जाती, नाही राघव के समान अरुण शब्द अरुणवंश के अर्थ में किसी पुस्तक में मिलता है, यदि अरुण के नाम से वंश चलता तो किसी ग्रन्थ में तो इस अर्थ का बोधक शब्द मिलता। दूसरा कारण यह है कि अरुण से पूर्व वंशोच्छेद का भय भी नहीं था और नाहीं अरुण कोई बड़े पराक्रमी राजा हुए हैं। अतएव इनके नाम से संस्कृतसाहित्यशैली के अनुसार वंश प्रसिद्धि भी नहीं हो सक्ती थी। सूर्यवंश में जितने राजा हुए हैं उन सब के नाम से वंश प्रसिद्धि नहीं हुई है, अज जैसे पराक्रमी राजा के नाम से तो बंश की प्रसिद्धि हुई ही नहीं। फिर हम किस युक्ति से कह सकते हैं कि अरुण से वंश चला हो। इसलिए हमको कहना पड़ता है। कि अरुण से अरोड़वंश की उत्पत्ति बतलाना अत्यन्त निर्मूल तथा नाम मात्र की समानतारूपी कागज़ की नींव पर भयानक वेगवाले समुद्र में युद्ध के लिए सेतु का तैय्यार करना है ऐसी दशा में जबकि हमारे पास और कोई प्रमाण नहीं है, यह कह देना कि अरुणसे अरोड़ हुए हैं अयुक्तियुक्त साहस है। केवल नाम से यदि जाति का निर्णय करना हो तो कल्ह को कुम्हार भी आकर कह देंगे कि हमारी उत्पत्ति कुमार जो शिवजी के पुत्र हुए हैं उनसे हुई है क्योंकि कुमार और कुम्हार शब्द में थोड़ा सा ही भेद है अतः इस विषय के निर्णय के लिए इसप्रकार की युक्तियों का त्याग करके हमको बलवान युक्तियों की शरण लेनी चाहिये॥

यदि यह कहा जाय कि परशुराम की चढ़ाई के समय जिन क्षत्रियों नें ' अरोर ! ' कहा उनका नाम अरोड़ा होगया तो यह युक्ति भी मेरे विचार में उचित नहीं प्रतीत होती है, इससे यह विदित होता है कि परशुराम के समय में इन क्षत्रियों का नाम 'अरोरे' पड़ गया था यादि वास्तव में ऐसा ही होता तो जिन कवियों ने परशुराम के युद्ध का वर्णन पूर्णरीति से किया है वह लोग अवश्य 'अरोरे' की चर्चा करते, पर किसी ग्रन्थ में इस प्रकार की चर्चा नहीं आई है। वास्तव में तो 'अरोरे' शब्द का उच्चारण दो प्रकार से होसकता है, क्रोध से या भय से। पुराणों को देखने से विदित होता है कि जिन क्षत्रियों ने परशुराम का क्रोध से सामना किया था उन क्षत्रियों को तो परशुराम ने अवश्य ही मारडाला, तब हम कैसे कह सकते हैं कि क्रोध मे 'अरोरे' शब्द के उच्चारण करने वाले क्षत्रिय अरोरे कहलाए हैं। जिन को भय था वह तो परशुराम से सामना ही नहीं करते थे किन्तु बन को भाग जाते थे। ऐसे अवसर पर यह सम्भव नहीं था कि वह 'अरोरे' शब्द का उच्चारण कर सकते थे क्यों कि वह लोग पहले से ही सावधान रहते थे और इस 'अरोरे' शब्द से आकस्मिक आपत्ति का ही भाव निकलता है। यदि यह भी मान लिया जाय कि उन्होंने इस शब्दका उच्चारण किया हो तथापि यह असम्भव सा ही प्रतीत होता है कि इतने क्षत्रियों ने जिनकी सन्तान आज लाखों अरोड़े वर्तमान हैं एक ही 'अरोरे' शब्द का उच्चारण किया हो, यह बात अनुभव के विरुद्ध है। यदि पांच छः आदमियों को खड़ा कर उनको आकस्मिक आपत्ति देखा कर परीक्षा की

जायँ तो सब के मुंह से एक ही शब्द नहीं निकलेगा यद्यपि उनके हृदय का भाव एक ही हो तथापि उसके द्योतक प्रायः भिन्न २ शब्द होंगे एक नहीं । जब यह बात पाँच छः मनुष्यों के विषय में ठीक नहीं हो सकती तो उतनें क्षत्रियों के विषय में कब सम्भव था कि उन्हों ने एक ही शब्द का उच्चारण किया हो ?

बहुत लोग यह भी कहते हैं कि 'रोड़ी कोट' में आने से अरोड़े कहलाये परन्तु केवल इतना ही कहना युक्त और पूरा नहीं है 'रोड़ीकोट' में निवास से जाति का निर्णय नहीं हो सकता इससे यह विदित नहीं होता है कि रोड़ीकोट में आने से पूर्व अथवा उस समय उनकी क्या जाति थी ? वास्तव में रोड़ीकोट हाल का बसा हुआ नगर है और मेरे विचार में अरोड़ जाति बहुत प्राचीन है और उसका यह नाम उस समय से चला आया है जब कि रोड़ीकोट का कुछ भी पता नहीं था ॥

अब इन सब विचारों को एक ओर रख कर यहां पर शास्त्रीय प्रमाणों से यह पुष्ट किया जावेगा कि 'अरोड़े' जाति चन्द्रवंशीय राजा अर्जुन के (जिनके पिताका नाम कृतवीर्य्य था) वंश में से है इसके लिए निम्न लिखित ऐतिहासिक कथा का लिखना अत्यन्त आवश्यकीय है—

अर्जुन का नाम भारत के इतिहास में प्रसिद्ध है श्रीमद्भाग-वत में लिखा है कि अर्जुन के समान पराक्रमी, विद्वान्, योगी और वीर होना इस जगत में राजाओं के लिए अत्यन्त कठिन है । एक समय की चर्चा है कि अर्जुन रेवा नदी में जल क्रीड़ा कर

रहा था दूसरी ओर से रावण भी दिग्विजय करता हुआ आ पहुंचा। उसने अपना डेरा उसी स्थान में ठीक रेवा नदी के किनारे डाला अर्जुन के बाहूबल से नर्मदा की लहरें यहां तक बढ़ जाती थीं कि रावण का डेरा भी जल प्रवाह से डग मगाने लग जाता था इसको देखकर रावण को क्रोध आया अर्जुन से युद्ध के लिए उद्यत होगया। अर्जुन ने उसको पकड़ कर अपने बगल में दबालिया और जैसे बानर को तमासे के लिए पकड़ कर पीछे छोड़ देते हैं उसी प्रकार उसको पीछे छोड़ दिया रावण भी हार मान कर लौट गया। केवल अर्जुन में इतना बल ही नहीं था किन्तु वह धर्म पूर्वक राज्य भी करते थे जब कोई प्रजा पाप करने का विचार करती थी उस समय उसके हृदय के सामने अर्जुन का रूप प्रत्यक्ष दिखाई देता था और वह भय से पाप का विचार छोड़ देता था इतना होने पर भी सम्पत्ति और ऐश्वर्य्य ने अपना अनिवार्य्य प्रभाव अर्जुन के हृदय पर अन्त में बैठाल ही दिया अर्जुन को अभिमान होगया कि मेरे सामने इस जगत में दूसरा कोई नहीं है।

"ततस्सरथमास्थाय ज्वलनार्कसमद्युतिम्
अब्रवीद्वीर्य्यसम्मोहात्कोऽन्योस्ति सदृशोमम"
धैर्य्येवीर्य्ये यशःशौर्य्ये विक्रमेणौजसापिवा।
तद्वाक्यान्तेऽन्तरिक्षेवै वागुवाचाशरीरिणी॥

नत्वं मूढ़ विजानीषे ब्राह्मणंक्षत्रियाद्वरम्।
सहितो ब्राह्मणेनेह क्षत्रियः शास्तिवै प्रजाः॥

अर्जुन उवाच–

कुर्य्यां भूतानि तुष्टोऽहं क्रुद्धोनाशं तथानये ।
कर्मणा मनसा वाचा न मत्तोऽस्तिवरोद्विजः ॥
पूर्वोब्रह्मोत्तरो वादोद्वितीयः क्षत्रियोत्तरः ।
त्वयोक्तौहेतुयुक्तौ तौ कथन्नुब्राह्मणोवरः ? ॥
सर्वभूतप्रधानां स्तान्भैक्ष्यवृत्तीनहं सदा ।
आत्म सम्भावितान्विप्रान्स्थापयाम्यात्मनो वशे॥
कथितंह्यनयासत्यं गायत्र्या कन्ययादिवि ।
विजेष्याम्यवशान्सर्वान्ब्रह्मणाँश्चर्मवासस: ॥
नचमांच्यावयेद्राष्ट्रात्रिषुलोकेषु कश्चन ।
देवो वा मानुषो वापितस्माज्ज्येष्ठो द्विजादहम् ॥
अथ ब्रह्मोत्तरं लोकं करिष्ये क्षत्रियोत्तरम् ।
नहिमे संयुगे कश्चित्सोढु मुत्सहते बलात् ॥
अर्जुनस्य वचःश्रुत्वा वित्रस्ताऽभून्निशाचरी ।
अथैन मन्तरिक्षस्थः ततोवायुरभाषत ॥
त्यजैनं कलुषं भावं ब्राह्मणेभ्यो नमस्कुरु ।
एतेषां कुर्वतः पापंराष्ट्रक्षोभो भविष्यति ॥
अथैव त्वां महीपाल शमयिष्यन्ति ये द्विजाः ।
निरसिष्यन्ति ते राष्ट्राद्धतोत्साहं महाबलाः ।

——०——

महाभारत–अनुशासनिक पर्व ।

अर्थ—इसके अनन्तर जलते हुवे सूर्य्य के समान प्रकाश वाले रथ पर बैठ कर अपने पराक्रम के अभिमान के वश में आकर कार्त्तवीर्य्य (अर्जुन) बोलने लगा कि मेरे समान दूसरा इस जगत में कौन है ? धीरज, पराक्रम, वीरता, यश और प्रभाव में मेरा सामना कोई नहीं कर सकता, अर्जुन के इस गर्वित वचन को सुनकर आकाशवाणी हुई । आकाश बाणी ने यह कहा कि-ऐ मूर्ख ! क्या तुझे यह मालूम नहीं है कि क्षत्रिय से ब्राह्मण बढ़ कर हैं और ब्राह्मण की सहायता से ही क्षत्रिय प्रजाओं पर शासन करता है । इसके अनन्तर अर्जुन बोला कि मैं प्रसन्न होकर नानाविध सम्पत्तियों को देसकता हूं और क्रुद्ध होकर नाश भी कर सकता हूं । मन, कर्म तथा वचन में ब्राह्मण मुझ से किसी प्रकार बड़ा नहीं है, तुमने जो कारण दर्शाते हुए यह कहा है कि पहले ब्राह्मण तत्पश्चात् क्षत्रिय है तो भला यह तो बतलाओ कि ब्राह्मण किस प्रकार श्रेष्ठ है ? वे ब्राह्मण जो कि सब प्राणियों मे श्रेष्ठ गिने जाते हैं और जो भिक्षा से अपना निर्वाह करते हैं सर्वदा मेरे ही वश में रहते हैं क्योंकि मैं इनका कुछ थोड़ा सा सत्कार करदिया करता हूं अस्तु, इस आकाश बाणी में कुछ सार प्रतीत होता है इसलिए इन मृग चर्म के पहिनने वाले बिचारे ब्राह्मणों को क्षणमात्र में ही जीत लूंगा, तीनों लोकों में कोई ऐसा नहीं है जो मुझे राज्य से गिरा सके चाहे वह देवता हो या मनुष्य हो, और इसीलिए ब्राह्मण मुझसे श्रेष्ठ नहीं हैं आज से इस जगत् में जहां ब्राह्मण सब से ऊंचे समझे जाते हैं क्षत्रियों के पद को ऊंचा बना दूंगा । इसके

उपरान्त पूर्वोक्त आकाश में स्थित वायु बोला कि ऐ अर्जुन ! तू इस मलिन भाव को छोड़ दे, और ब्राह्मणों के सामने शिर झुका। यदि तू इनसे पाप करेगा तो तेरा राज्य नष्ट हो जाएगा अथवा जो ब्राह्मण तेरे अभिमान को दबाकर तुझे शान्त कर देंगे वही तेरे उत्साह के टूट जाने पर तुझे देश से बाहर भी निकाल देंगे ॥

इसी बीच में एक समय वन में घूमते हुए महाराजा अर्जुन जमदग्नि के आश्रम पर आपहुंचे, ऋषि ने अपने गौ की महिमा से राजा का तथा उनके अनुचरों का भली भान्ति सत्कार किया राजा गौ के प्रताप को देखकर चकित रह गया और उसके मन में लोभ ने अपना पैर जमाया उसने ऋषि से गौ की याचना की, जब ऋषि ने गौ को देना स्वीकार न किया तो राजा ने अपने भृत्यों को गौ को बल पर्वक लेजाने की आज्ञा दी राजा के सिपाही गौ को बलात राजधानी को लेगये। जब परशुराम वन से लौ कर आए तो उन्हों ने इस बात को सुना, सुनते ही उनके मनमें बड़ा क्रोध हुआ और धनुषबाण तथा परशु को लेकर राजा अर्जुन से गौ को लौटा लाने को उनके राजधानी को चले। इन को इसप्रकार क्रोध से आते हुए देखकर अर्जुन ने अपनी सेना नगर के चारों ओर खड़ी करदी और स्वयं लोभ के वश में आकर अपने शस्त्र का धारण किएहुए परशुराम से लड़ने के लिए उद्यत होगया। परशुराम ने जब देखा कि राजा के हृदय में ऐसा अधर्म भाव आगया है कि दूसरे की वस्तु को बलात्कार से अपना बनाना चाहता है तो उनको और भी क्रोध आया, दोनों

ओर से घोर संग्राम के अनन्तर परशुराम ने अर्जुन का शिर काट लिया ॥

तब तो सब सेना इधर उधर भाग गई। और परशुराम गौ को लेकर घर लौट आए, जब यह सब वृत्तान्त उन्होंने अपने पिता से कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि :–

राम राम महाबाहो भवान् पापमकार्षीत् ।
अवधीन्नरदेवं यत्सर्वदेवमयं वृथा ॥ ३८ ॥
वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः ।
ययालोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमियात्पदम् ॥ ३९ ॥
क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा ।
क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ॥ ४० ॥
राज्ञो मूर्धाविषिक्तस्य वधोब्रह्मवधादगुरुः ।
तीर्थसंसेवयाचांहो जह्यङ्गाच्च्युतचेतनः ॥४१॥

(श्रीमद्भागवत स्क० ९, अ० १५)

अर्थ–ऐ विपुल भुजाधारी परशुराम ! तुमने बड़ा घोर पाप किया है क्योंकि राजा को जिसमें सब देवताओं का अंश होता है उसको मार डाला है। हम ब्राह्मण लोग क्षमा की महिमा से ही उच्च पद को प्राप्त होते हैं। क्षमा के प्रताप से ही सब लोकों का शिक्षक परमेश्वर भी अपनी उच्च सत्ता में विद्यमान हैं। ब्राह्मणों की श्री क्षमा के कारण सूर्य के प्रभा के समान शोभा देती है क्षमा करने वाले मनुष्यों से परमेश्वर भी शीघ्र ही सन्तुष्ट होजाता

है। उस राजा का बध जिसका कि राजतिलक होचुका है ब्रह्महत्या से भी बढ़कर है। अतएव तुम तीर्थों में पर्यटन करो और यम नियमादि से सावधान होकर इस पाप से छूट जाने का प्रयत्न करो ॥

इसप्रकार पिता की आज्ञानुसार जब परशुराम तीर्थयात्रा करके लौटे तो एक और दुर्घटना हुई। एक समय परशुराम अपने भाइयों के साथ बन में समिधा लेने को गये थे इतने में ही अर्जुन के पुत्रों ने जो सर्वथा अपने पिता के बध के बदले में जमदग्नि को मारने के लिये अवसर ढूंढते थे आश्रम पर आकर शान्त तथा ध्यान में निमग्न ऋषि को पाकर उनका शिर काट दिया ॥

परशुराम की माता ने बहुत प्रार्थना भी की पर उन्होंने उस की एक भी न सुनी। इसके अनन्तर परशुराम की माता की आर्त्त ध्वनि परशुराम के कान में पड़ी, सुनते ही परशुराम आन पहुंचे और अपने पिता को मरे देखकर प्रतिज्ञा की कि मैं इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रिय रहित कर दूंगा। झट पट अपना शस्त्र लेकर परशुराम अर्जुन की राजधानी को चल दिए। वहां जाकर जो अर्जुन के पुत्र उनके सामने मिले उन सब को मार दिया और घर लौट आए इस समय उनके मन में बड़ी करुणा आई और दया के भाव से बन में तप करने के लिये चले गये। इसके कुछ दिन अनन्तर विश्वामित्र के पौत्र परावसु ने यज्ञ किया और उसमें परशुराम भी आए उस समय परावसु ने इनकी निन्दा की :-

परावसु र्महाराज क्षिप्त्वाह जनसंसदि।
ये ते ययातिपतने यज्ञे सन्तः समागताः ॥५७॥

प्रतर्दनप्रभृतयो रामा किं क्षत्रिया नते ? ॥ ५८ ॥
मिथ्याप्रतिज्ञो रामत्वं कत्थसे जनसंसादि ॥
भयात्क्षत्रियवीराणां पर्वतं समुपाश्रितः ॥ ५९ ॥
सा पुनः क्षत्रियशतैः पृथिवी सर्वतःस्तृता ॥
परावसुर्वचः श्रुत्वा शस्त्रं जग्राह भार्गवः ॥६०॥
ततोये क्षत्रिया राजन् ! शतसस्तेन वर्जिताः ॥
ते विवृद्धाः महावीर्य्याः पृथिवीपतयोऽभवन् ॥६१॥
सपुनस्तान् जघानाशु वालानपि नराधिप ॥
गर्भस्थैस्तु मही व्याप्ता पुनरेवाऽभवत्तदा ॥६२॥
जातं जातं सगर्भन्तु पुनरेव जघानह ॥
अरक्षँश्च सुतान्काँश्चित्तदा क्षत्रिययोषितः ॥६३॥
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ॥
दक्षिणा मश्वमेधान्ते कश्यपायाऽददात्ततः ॥६४॥

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ४९ श्लो० ५७–६४

अर्थ—उस सभा में जहां कि नाना देश देशान्तर से लोग आये थे महाराज परावसु परशुराम की ओर कटाक्ष करके बोले कि ऐ परशुराम क्या यहां ययातिपत्तन में आये हुए सज्जन गण क्षत्रिय नहीं हैं ?। यहां पर प्रदर्तन आदि कई एक राजा आये हैं। और यह सब क्षत्रिय हैं । तुमारी प्रतिज्ञा जो क्षत्रियों के नाश करने की थी वह झूठी होगई । तुम व्यर्थ सभायों में लम्बी चौड़ी बातें हांकेत फिरते हो । तुम अपने पिता के बचन से नहीं किन्तु

केवल क्षत्रिय वीरों के डर से पर्वत में तपके बहाने जा लुके हो। देखो सैकड़ों क्षत्रिय इस पृथिवी भर में फैले हुये हैं। अब तुम्हारी प्रतिज्ञा कहां गई? इस दुर्वचन को सुन कर परशुराम को क्रोध आया, उन्होंने शस्त्र को उठाया और जिन्ह क्षत्रियों को उन्होंने निर्बल समुझकर छोड दिया था और जो इस समय बड़े २ भूपति हो गये थे उन्ह सबको मारना शुरू कर दिया। उस समय में भय से कुछ क्षत्रियों की स्त्रिएं कन्दरावों आदि में जा लुकीं। इस प्रकार परशुराम ने पृथिवी को २१ बार निःक्षत्रिय करके अश्वमेध यज्ञ किया और यज्ञ के अन्त में पृथिवी को कश्यप के लिए दान कर दिया—

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि परावसु के इन्ह असह्य शब्दों को सुनकर परशुराम को अपनी पिछली प्रतिज्ञा याद आई और इन्होंने पृथिवी को २१ बार निःक्षत्रिय करके अश्वमेध यज्ञ किया इस यज्ञ के अन्त में सब पृथिवी कश्यप को दक्षिणा में देदी—इसके बाद कश्यप ने यह सोचा कि यदि परशुराम फिर यहां पर रह गये तो पृथिवी के बचे खुचे क्षत्रियों को भी नहीं छोड़ेंगे क्योंकि परशुराम के भय के मारे कुछ स्त्रियें अपने बच्चों को लेकर बन में भाग गई थी और जब यह बालक युवा होते तो परशुराम उन्हको भी मार डालते। इस लिए कश्यप ने परशुराम से कहा कि पृथिवी को आपने हमारे लिए दान दे दीया है, अब पृथिवी पर आपका कोई अधिकार नहीं है आप हमारे राज्य से बाहर चले जाइये, परशुराम ने उनकी बात स्वीकृत की और दक्षिण समुद्र के किनारे आश्रम बनाकर तप करने लगे, इस प्रकार की व्यवस्था के अनन्तर कश्यप महाराज भी

अपने ध्यान समाधि आदिक कर्तव्य में तत्पर होगये तब तो पृथिवी को बहुत कष्ट पहुंचने लगा। कोई राजा न रहा, न कोई शासक रहा, ऐसी दशा में पृथिवी ने कश्यप से राजा के लिए प्रार्थना की और कहा कि—

सन्ति ब्रह्मन् मया गुप्ताः स्त्रीषुक्षात्रियपुंगवाः ।
हैहयानां कुले जातास्ते संरक्षन्तु मां मुने ॥७३॥
अस्ति पौरवदायादो विदूरथसुतः प्रभो ।
ऋक्षैः सम्वर्द्धितो विप्र ऋक्षवत्यथ पर्वते ॥७४॥
तथानुकम्पमानेन यज्वनाप्यमितौजसा ।
पराशरेण दायादः सौदासस्याभिरक्षितः ॥७५॥
सर्वकर्माणि कुरुते शूद्रवत्तस्य स द्विजः ।
सर्वकर्मेत्यभिख्यातः स मां रक्षतु पार्थिवः ॥७६॥
शिविपुत्रो महातेजा गोपतिर्नाम नामतः ।
वने सम्वर्द्धितो गोभिः सोभिरक्षतु मां मुने ॥७७॥
प्रतर्दनस्य पुत्रस्तु वत्सो नाम महाबलः ।
वत्सैः सम्वर्द्धितो गोष्ठे समारक्षतु पार्थिवः ॥७८॥
दधिवाहनपौत्रस्तु पुत्रो दिविरथस्यच ।
गुप्तः स गौतमेनासीद् गंगाकूलेऽभिरक्षितः ॥७९॥
बृहद्रथो महातेजा भूरिभूतिपरिष्कृतः ।
गोलांगूले महाभाग गृध्रकूटेऽभिरक्षितः ॥८०॥

मरुत्वस्यान्ववाये च रक्षिताः क्षत्रियात्मजाः ।
मरुत्पतिसमावीर्ये समुद्रेणाभिरक्षिताः ॥८१॥
एते क्षत्रियदायादास्तत्र तत्र परिश्रुताः ।
द्योकारहेमकारादिजाति मित्थं समाश्रिताः ॥८२॥
यदि मामभिरक्षन्ति ततः स्थास्यामि निश्चला ॥८३

हे कश्यप ! मेरी सहायता से हैहयों के वंश में उत्पन्न बहुत से क्षत्रियों को बालक अवस्था में जहा तहां छिपाकर स्त्रियों ने रक्षा की है। पौरववंश का विदूरथ का पुत्र ऋक्षवत (रैवतक) पर्वत में है। इसीप्रकार अतुल तेजवाले पराशर ने सौदास के वंशवालों की भी रक्षा की है। वह पराशर मुनि की सब प्रकार की सेवा करता है इसीलिये उसका नाम सर्वकर्मा पड़ गया है। शिवि का पुत्र राजा गोपति बन में बसा है वह भी मेरी रक्षा करे। बड़ा बलवाला प्रतर्दन का पुत्र भी बछड़ों के साथ अपना निर्वाह करता है। गौतमऋषि ने दधिबाहन के पौत्र और दिविरथ के पुत्र की रक्षा की है और वह गङ्गा के किनारे रहते हैं। महाराज बृहद्रथ जिनके पास बहुत विभूति है गृध्रकूट में निवास करते हैं। मरुत राजा के वंशवाले क्षत्रियपुत्र जोकि इन्द्र के समान पराक्रमी हैं समुद्र के किनारे बसे हैं। यह क्षत्रिय जो जहां तहां सुने जाते हैं सोनार, सौधकार, लोहार आदि जातियों के बंश में कहे जाते हैं (क्योंकि इनको परशुराम से भय था कि कहीं पहिचान न लें) मेरा कष्ट तभी दूर होगा जब कि यह सब क्षत्रिय मेरी रक्षा करेंगे॥

इस महाभारत की कथा का लिखने का यहां तात्पर्य यह

है कि जिस घटना का इस कथा में वर्णन किया गया है वही इस 'अरोड' वंश की उत्पत्तिका मुख्य कारण है। पाठकगण! स्मरण रहे कि अरोड़ वंश आज का बना हुआ नहीं है किन्तु उस समय का है जब कि परशुराम ने क्षत्रियोंका नाश करने की प्रतिज्ञा की थी। इसका अरोड़ (ओड्र) नाम द्वापर से पड़ा है। वैसे तो ओड्र वंश उस चन्द्रवंश की शाख है जिसके आदि समय का पता लगाना अत्यन्त कठिन है। महाभारत के पूर्वोक्त श्लोकों को पढिये और आपको विदित होजावेगा कि परशुराम के भय से क्षत्रिय जहां तहां छिप गये थे और उन्होंने सोनार लोहार आदि की जातीय कृत्य शिल्पविद्या आदि से अपना निर्वाह करना प्रारम्भ कर दिया था और अपनी जाति भी सोनार लोहार आदि की बतलाते थे :-

उस प्राचीन समय का प्रतिबिम्ब आजकल भी दिखाई देता है। इन दिनों में भी बहुत से अरोड़वंश वालों का यही पेशा है कि वह सोनार आदि की शिल्पविद्या का कृत्य करते हैं॥

सिन्ध में 'अरोड़' को लोहाने कहते हैं यह केवल इसी कारण से कहते हैं जैसे कि ऊपर लिखे हुए महाभारत के श्लोकों से विदित होता है कि यह परशुराम के समय में लोहे का काम अवश्य करते होंगे। अतएव आजतक इन लोगों का नाम लोहाना ही रह गया। लोहाने और अरोड़ यह दो जातियें नहीं हैं किन्तु एक ही हैं क्योंकि इनकी शैली और रीतियें प्रायः मिलती हैं। अब जब कि महाभारत के श्लोकों से विदित होता है कि पुराने समय में कुछ क्षत्रियों ने भी लोहे का काम शुरू कर दिया था और अपने आपको लोहकार कहा करते थे और आजकल भी

लोहाने जाति वाले पाए जाते हैं तो इनको और अरोड़ों को (जो लोहाने से भिन्न नहीं हैं) क्षत्रिय कहने में क्या सन्देह है ?

दूसरा कारण यह है कि अरोड़ों में यज्ञोपवीत संस्कार पुराने समय से प्रायः होता आया हुआ दीखाई देता है और यह तो निर्विवाद वृत्त है जिसको प्रायः सभी मानते हैं कि आज से कम से कम सौ बरस पहिले शूद्रों का यज्ञोपवीत नहीं होता था। पुरोहित लोग इनका विवाह वैदिक मन्त्रों से कराते चले आते हैं। इस प्रकार इनकी वर्त्तमान विधियों से भी अनुमान किया जासक्ता है कि यह शूद्र नहीं हैं। यदि इन लोहाने या अरोड़ों को वैश्य कहा जाए तो भी ठीक नहीं क्योंकि इसमें कोई मूल नहीं है। हां, इनको क्षत्रिय तो कह सकते हैं क्योंकि अभी महाभारत का श्लोक लिख चुके हैं जिससे यह विदित होता है कि प्राचीन समय में क्षत्रिय लोहकृत्य करते थे और इसलिए इनका नाम आजतक 'लोहाना' रह गया ॥

'अरोड़' नाम किसतरह पड़ा यह आगे दिखलाया जावेगा

पुस्तक में दिये हुए मानचित्र (नकशा) को देखिये तो आपको ज्ञात होजावेगा कि भारतवर्ष के जिस प्रदेशविशेष में 'अरोड' जाति आज कल पाई जाती है, वहां कहां से और किस प्रकार आई ?

महाराजा अर्जुन (कार्तवीर्य) की राजधानी माहिष्मती थी। पूर्व वर्णित क्षत्रिय नाश की घोर घटना का मुख्य स्थान यही था क्योंकि परशुराम की क्रोधाग्नि पहिलेपहिल यहीं पर उत्तेजित हुई थी। यह स्थान इसीलिये मानचित्र में प्रधान गिना जा सक्ता है ॥

पूर्वोक्त महाभारत के श्लोकों से तथा श्रीमद्भागवत के वंशवर्णन अध्याय की समालोचना से विदित होता है कि परशुराम के भय से शिवि महाराज के पुत्र नकशे में दीखलाये हुए शिवि-राज में ही कहीं न कहीं छिपे होंगे। महाराज वत्स यमुना और गंगा के बीच प्रदेश में जालुके होंगे जहां कि पीछे से उनके नाम पर 'वत्सराज्य' स्थापित होगया। सौदास 'पंचाल' में चले गये थे, बृहद्रथ 'चेदी' में, विदुरथ 'ऋक्षवत पर्वत' में और दधिवाहन का पौत्र तथा दिविरथ का पुत्र 'अङ्ग' देश के आस पास में छिप गये थे। मरुत्त ने अपनी प्राणरक्षा के निमित्त पश्चिम समुद्र के किनारे शरण ली। अब प्रश्न यह रहा कि जो अर्जुन के पांच पुत्र बचे थे वह किस तरह बचे और यदि भागकर बच गये थे तो किसदेश में भागे थे? 'वत्सराज्य' तथा 'शिविराज्य' के समान उस देश का नाम जहां पर अर्जुन के सन्तान भागे थे कुछ पड़ा या नहीं? ऊपर लिखे महाभारत के ६३वें तथा ७३वें श्लोक से विदित होता है कि जब अर्जुन के बहुत से पुत्र युद्ध में मारे गये तब स्त्रियें जिनके गर्भ में बालक थे या जिनके बालक अभी शिशु अवस्था में थे राजधानी अर्थात् माहिष्मती से दूर भाग गईं। इस प्रकार यह अर्जुन के पांच पुत्र बच गए। महाभारत में जैसे और प्रधान २ राजा जहां भागकर गये थे उनह स्थानों के नाम लिखे हैं वैसे अर्जुन के सन्तान का पता नहीं दिया है कि वह कहां भागे थे। केवल इतना कह दिया है कि अर्जुन की सन्तान की रक्षा स्त्रियों ने की है। अस्तु, अर्जुन के सन्तान में जो युवा पुरुष थे वह तो युद्ध में मारे ही जाचुके थे, स्त्रियें अथवा कुछ बालक शेष रह गये थे। परशुराम की प्रतिज्ञा

थी कि क्षत्रियों के पुरुषमात्र का नाश कर देंगे अतएव बालकों की रक्षा के लिए 'माहिष्मती' राजधानी को छोड़ कर और क्षत्रियों की न्याईं अर्जुन के घर की स्त्रिएं भी अवश्य अन्यत्र कहीं भागी होंगी। और तो क्षत्रिय पुरुष थे वह अपनी स्त्रिएं तथा बच्चों के साथ नदी नद को पार होते हुए कहीं न कहीं पर्वतों तथा बनों में जा लुके थे पर यह बीचारी स्त्रियें थीं पर्वत आदि इनके लिए अत्यन्त भयानक थे। यह माहिष्मती राजधानी से उत्तर तथा पश्चिम के कोण की तरफ चलीं और उस स्थान में जिस के अन्तर्गत आजकल का 'सिन्ध' का इलाका आजाता है निवास किया। धीरे धीरे जब यह भयानक दृश्य कुछ शान्त हुआ और उन्हके पुरुषों के युद्ध में मारे जाने से शोकाग्नि कुछ अंश तक ठण्डी पड़ी तब इन्हका स्वाभाविक प्रताप प्रकट होने लगा—कुछ अंशतक इस कारण से कि यह सम्राट् के घर की स्त्रियें थीं और इन्हके स्वाभाविक गुण तथा आर्थिक बाहुल्य से भी धीरे २ लोग इन्हके शासन को मानने लगे। क्रमशः जब इनका प्रताप बढ़ने लगा इन्होंने भारतवर्ष के एक विभाग में राज्य करना प्रारम्भ कर दिया। सम्भव है कि 'भारत' के इतिहास में सब से पहिला यही समय था जब इस देश में जहां की परशुराम के कारण इतनी हल चल मची थी स्त्रियों ने राज्य किया इस वृत्तान्त से प्राचीन भारत का अद्वितीय गौरव का स्मरण होता है कि कभी ऐसा भी समय था जब कि 'भारत' की बुद्धि तथा प्रबन्धकर्त्री शक्ति इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि स्त्रिएं भी असाधारण समय में राज्य का प्रबन्ध कर सक्ती थीं।

परशुराम का सङ्कल्प क्षत्रिय स्त्रियों को मारने का नहीं था

इस लिए यह स्त्रियें प्रकट राज्य करने लगीं। जिस देश में इन्होंने राज्य किया उस देश का नाम 'स्त्रीराज्य' पड़ गया यह देश पश्चिम और उत्तर के कोण में है। देखिए वृहत्संहिता में श्रीवाराहमिहिराचार्य्य ने भी इस देश का पता दिया है।

दिशि पश्चिमोत्तरस्यां माण्डव्यतुषारतालहलमद्राः।
अश्मक कुलूतलहडस्त्रीराज्यनृसिंहवनखस्थाः॥

वृ० सं० अ० १४ श्लो० २२॥

अर्थ—पश्चिम और उत्तर की दिशा में अर्थात वायव्य कोण में यह देश हैं:—

माण्डव्य, तुषार, तालहल, मद्र, अश्मक, कुलूतक, हड, और स्त्रीराज्य आदि॥

यद्यपि यह स्त्रिएं राज्य करने लगीं, तथापि यह अपनी सन्तति की रक्षा नहीं कर सक्ती थीं; क्योंकि परशुराम का संकल्प क्षत्रिय पुरुषों को मारने का था। इस लिए इन के बालक युवा होने पर इन से अवश्य अलग हो प्राण रक्षार्थ सोनार, लोहार आदि का काम करने लगे होंगे, परशुराम के प्रधान और मुख्य शत्रु यही थे अतएव यह इस प्रकार रहने लगे कि परशुराम को सन्देह मात्र भी न होसके कि यह क्षत्रिय हैं, यह लोग अधिकतर 'स्त्रीराज्य' के पूर्व विभाग में आगये और वहां पर शिल्पकारी का काम करने लगे और अपने को लोहार सोनार आदि बताने लगे जैसे कि महाभारत का श्लोक पहिले लिख चुके हैं—

(धोकर हेमकारादि जाति मित्यं समाश्रिताः)। शान्ति पर्व महा भारत का जो श्लोक पहिले हम लिख चुके हैं उस से विदित होता है कि जो क्षत्रिय परशुराम के भय से भागे थे उनकी प्रायः पराशर, गौतम आदि ने रक्षा की थी, इस लिये सम्भव है कि उनका यज्ञोपवीत संस्कार आदि भी ब्राह्मण लोग कराते हों और वह केवल उपर से शूद्र का काम करते हों। पर अर्जुन के सन्तान जो इस समय स्त्रीराज्य के पूर्व विभाग में आगये थे और जिनको कि परशुराम से अधिक भय था, सम्भव है कि अपना पता वह किसी को न देते हों और शूद्रवत् रहते हों, यहां तक कि भेद खुल जाने के भय से किसी ब्राह्मण को संस्कार आदि के लिए भी न बुलाते हों। इस का फल यह हुआ कि वह शूद्रवत् अर्थात् शूद्र समझे जाने लगे, इसी लिए इन का नाम 'उड्र' पड़ गया। 'उडु 'अनादरे' धातु से उड्र बना है। जिस का अनादर हो अर्थात् जिस को उत्तम न समझा जाय वह 'उड्र' है (उड्डीयते अनाद्रियते इतिओड्रः) क्योंकि उस हल चल के समय में लोग इन को शूद्र समझते लगे थे इसी लिए इन्हें को उड्र कहने लगे।

मनु ने भी लिखा है :—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः स्यु क्षत्रजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥
पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजाः जवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराताः दरदाः खसाः॥

मनु. अध्याय १० श्लो० ४३-४४

अर्थ—ब्राह्मणों के साथ संगमन होने के कारण यज्ञोपवीतादि संस्कार न होने से यह क्षत्रिय जातियें जो नीचे लिखी गई हैं शूद्रवत् अर्थात् शूद्र के समान गिनी जाने लगीं। पौण्ड्रक, ओड्र द्राविड, काम्बोज, जवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात दरद, और खस।

महाभारत तथा मनु के एकवाक्यता से यही प्रतीत होता है कि उस समय 'ओड्र' तथा अन्य क्षत्रिय शूद्र का काम करने लगे पर 'ओड्र' आज कल के भारत के वर्तमान क्षत्रियों की अपेक्षा अधिक शूद्र का काम करने लगे। इससे यह न समुझना चाहिए कि जो क्षत्रिय ओड्र आदि उस समय शूद्रवत कार्य्य करने लगे वह सर्वदा के लिये शूद्र हो गये इस प्रकार तो जितने क्षत्रिय आज कल कहलाते हैं वह कोई भी क्षत्रिय नहीं हैं। वास्तव में तो जैसे हम पहिले लिख चुके हैं कि जब सब क्षत्रिय पृथिवी में छितर बितर होगये, और समस्त भारत वर्ष का कोई एक शासन करने वाला न रहा तब पृथिवी को नाना-विध कष्ट पहुंचने लगा और उस ने कश्यप से जहां जो क्षत्रिय चले गये थे उन का पता दिया और कहा कि उन सब क्षत्रियों को बुलाकर मेरे शासन का अधिकार दो—कश्यप ऋषि भी उन क्षत्रियों को जिनको पृथिवी ने बतलाया था बुला कर नियुक्त किया॥

ततः पृथिव्या निर्दिष्टांस्तान् समानीय कश्यपः।
अभ्यषिञ्चन् महीपालान् क्षत्रियान् वीर्यसम्मतान्॥

महाभा० शां० अ० ४९ श्लो० ८९

अर्थ—तब पृथिवी से बतलाये हुए पराक्रमी क्षत्रियों को कश्यप ने बुलाकर राज्य दे दिया ॥

अब देखिए कि यद्यपि प्रथम क्षत्रिय लोग शूद्रवत् कार्य्य करने लगे थे तथापि जिस समय कश्यप ने उन को राज्य दिया है उस समय उन को क्षत्रिय लिखा है शूद्र नहीं। यदि वह हमेशा के लिये शूद्र होगए होते तो उन को शूद्र उस समय कहा गया होता क्षत्रिय नहीं। इस से तो यही विदित होता है कि जैसे संस्कार न होने से दर्पण में मालिन्य आ जाता है इसी प्रकार संस्कारादि न होने से क्षत्रिय पहिले शूद्रवत् होगये थे। पीछे राज्यस्थापन समय में कश्यप ने उन का पुनः संस्कार कर शुद्ध क्षत्रियत्व रूप प्रकट कर दिया। इस प्रकार 'ओड्र' को शुद्ध क्षत्रिय कहा जा सक्ता है। इस घटना के बहुत दिन पीछे तक का प्रमाण मिलता है जब कि 'ओड्र' को क्षत्रिय कहा गया है। महाभारत के सभा पर्व में युधिष्ठिर के समय में ओड्रको क्षत्रिय कहा गया है और युधिष्ठिर तो परशुरामके समय से बहुत पीछे हुए हैं। पहिले हम लिख चुके हैं कि जो अर्जुन के पुत्र 'स्त्रीराज्य' के पूर्व विभाग में रहने लगे थे वही उड्र कहलाते थे। यह शब्द दो रूप में मिलता है उड्र तथा ओड्र ॥

इस से यह विदित होता है कि पहिले तो जब अर्जुन के सन्तान शूद्रवत् कार्य करने लगे तब उन को लोग पूर्वोक्त कारण से 'उड्र' कहने लगे पर जब कश्यप ने उनको राज्य दे दिया तब उन्होंने अपना नाम 'ओड्र' रख लिया। ओड्र वह हुआ जो (आईषत् उड्रः ओड्रः) थोड़े ही समय के लिए शूद्रवत् अर्थात् निन्द्य कार्य करे।

यह ओड्र जिस देश में रहते थे उस का भी नाम ओड्र पड़ गया। जब पृथिवी ने कश्यप से और क्षत्रियों का पता दिया है उस समय ओड्रों का पता इस प्रकार दिया है।

सन्ति ब्रह्मन् मया गुप्ताः स्त्रीषु क्षत्रियपुङ्गवाः
हैहयानां कुले जातास्ते रक्षन्तु मां मुने ॥ ७३ ॥

महाभा० शा० अ० ४९।

अर्थ-(हैहयानां) हैहयों के (कुले) कुल में (जाताः) उत्पन्न (क्षत्रियपुङ्गव) उत्तम क्षत्रियों को (ब्रह्मन्) हे ब्रह्मन् (मया) मैंने (स्त्रीषु) स्त्रियों में अर्थात् स्त्रीराज्य में (गुप्ताः सन्ति) छिपाया हुआ है। (मुने) हे महर्षि (ते) वह (मां) मेरी (रक्षन्तु) रक्षा करें।

इस श्लोक से स्पष्ट है कि अर्जुन के वंश वाले स्त्रीराज्य में ही रहते थे। मानचित्र में देखिए ओड्र देश भी स्त्रीराज्य के पूर्व विभाग में ही है। ओड्र देश स्त्री राज्य से भिन्न नहीं है किन्तु उसी का पूर्वीय भाग का नाम ओड्र है। वैसे तो यह 'स्त्रीराज्य' में रहते होंगे क्योंकि इन्हीं के वंश की स्त्रियें वहां राज्य करती थीं किन्तु अधिकतर पूर्व विभाग में रहने से इन्ही के नाम से उस देश का नाम भी ओड्र पड़ गया। बृहत्संहिता में भी इस देश की चर्चा की है।

अथ पूर्वस्यामंजनवृषभध्वजमाल्यवद्गिरयः।
व्याघ्रमुख सुह्मकर्वटचान्द्रपुरा शूर्पकर्णाश्च ॥
खसमगधशिविरगिरि मिथिल समतटोड्राश्ववद-
नदन्तुरकाः ॥

बृ० सं० अ० १४, ५-६

पूर्व दिशा में निम्न लिखित देश हैं। अंजन, वृषभध्वज, माल्यवान् यह तीनतो पर्वत हैं; व्याघ्रमुख, सुह्म, कर्वट, चान्द्रपुर शूर्पकर्ण, खस मगध शिबिरगिरि, मिथिल, समतट, ओड्र अथवा उड्र इत्यादि ॥

इस श्लोक में पूर्व दिशा के देश गिनाते हुए 'ओड्र' को भारतवर्ष के पूर्व विभाग में बतलाया है। महाभारत के निम्न श्लोक से प्रतीत होता है कि यह देश भारत वर्ष के दक्षिण में है ॥

पाण्ड्यांश्च द्रविडांश्चैव संहितांश्चोड्रकेरलैः ॥

महाभा० स० अ० ३०

अर्थ—सहदेव ने दक्षिण दिशा में स्थित देश पाण्ड्य, द्रविड उड्र तथा केरल आदि को जीता ॥

क्या इन दोनों महाभारत तथा बृहत्संहिता में परस्पर विरोध आता है? कदापि नहीं। महाभारत में इस देश की चर्चा उस अवसर पर की है जब कि 'सहदेव' हस्तिनापुर से दक्षिण को दिग्विजय करने चले हैं। अब महाभारत तथा बृहत्संहिता के श्लोकों को इकट्ठा मिला कर अर्थ करने से अर्थात् एक वाक्यता करने से यह विदित होता है कि यह देश भारतवर्ष के पूर्वीय विभाग में हस्तिनापुर से दक्षिण है, जैसे कि मानचित्र में दिखाया है। इसी प्रकार जितने चित्र में देश दिखाये हैं उन सब का शास्त्रप्रमाणद्वारा स्थान नियत किया है किन्तु इस पुस्तक में 'स्त्रीराज्य' तथा 'ओड्र' की अधिक आवश्यकता होने से इन्ही के विषय में प्रमाण दिया है, दूसरों को अनावश्यक समझ कर नहीं लिखा।

जो कुछ पीछे लिखा जा चुका है उस से स्पष्ट विदित होता है कि ' ओड्र ' हैहय राजा के वंश में अर्थात् कार्तवीर्य अर्जुन के सन्तानों में से हैं। यह लोग बहुत प्राचीन समय से से सिन्ध तथा उसके आस पास के देशों में राज्य करते आये हैं और विशेष करके परशुराम की भयानक कोधाग्नि का दृश्य इसी देश में पहिले पहिल प्रकट हुआ ॥

अब इन सब बातों की पूर्वा पर समालोचना से विदित होता है कि इन्हीं ' ओड्र ' क्षत्रियों का नाम अन्त में आज कल जैसा कि प्रसिद्ध है ' अरोड़ ' पड़गया, जिस देश में ' अरोड़ ' आज कल अधिक पाए जाते हैं ' ओड्र ' क्षत्रिय उस देश में प्राचीन समय से राज्य करते आये हैं। इन दिनों में अरोड़ अधिकतर सिन्ध तथा पंजाब में बसते हैं। मानचित्र में देखिए ' ओड्र ' क्षत्रिय भी प्राचीन समय में स्त्रीराज्य में रहते थे जिस के अन्दर आज कल का ' सिन्ध ' भी आ जाता था और जो पंजाब से अत्यन्त ही लगभग था। इन्ही का नाम सिन्ध में ' ओड्र ' था और क्योंकि जैसे कि हम पहिले लिख चुके हैं थोड़े दिन यह लोग परशुराम के भय से लोहे का काम करते थे इस लिए सिन्ध में जोकि ' स्त्रीराज्य ' का पश्चिमीय विभाग है इनको आज तक ' लोहाने ' भी कहते हैं। यह प्रतीत होता है कि पंजाब में यह लोग कश्यप के राज्य देने के बाद आये क्योंकि यहां पर यह लोग केवल ' अरोड ' के नाम से प्रसिद्ध हैं ' लोहाने ' के नाम से नहीं ॥

सिन्ध में प्राण रक्षार्थ यह लोग अपने आप को 'लोहान' कहते थे किन्तु पंजाब में जब यह लोग आये 'लोहान' कहने की

आवश्यकता न रही क्योंकि इस समय इन्द्रको राज्य मिल चुका था और परशुरामकी क्रोधाग्नि भी शान्त होचुकी थी। हां, यह सन्देह हो सक्ता है कि 'ओढ्र' को 'अरोड' किस प्रकार कहने लगे? इसका उत्तर यही है कि जैसे पंजाब में 'भ्राता' को 'भ्रा,' 'पिता' को 'प्यु' 'बहुकर' को 'बोकर' और 'गतआसम्' को 'गयांसि' कहने लगे इसी प्रकार 'ओढ्र' को 'अरोड' कहने लगे। इस विषय में यदि और कुछ लिखने की आवश्यकता हो सक्ती है तो केवल यह है कि भारत वर्ष की आज कल की वर्तमान भाषायें प्राकृत से निकली हैं और प्राकृत संस्कृत से निकली है। संस्कृत में ओढ्र कहते हैं और प्राकृत में 'अरोड'। इस तरह प्राकृत से पंजाबी में 'ओढ्र' को अरोड कहने लगे। संस्कृत के बहुत से शब्द जब प्राकृत में परिवर्तित होते हैं तो केवल उन में अक्षरों का स्थान बदल जाता है, प्रकरण में इसी प्रकार ओढ्र (ओड्र् अ) अरोड (अर् ओड्) में बदल गया । अ जो चौथे स्थान में था पहिले में आगया और 'ओढ्' यह दो अक्षर पहिले दूसरे स्थान को छोड कर तीसरे चौथे में चले गये। इस तरह ओढ्र का अरोड होगया; सिन्ध में इनका राज्य पहिले ही से था। सम्भव है कि 'रोडीकोट' नगर भी इन्हीने बसाया हो पर यह भेद स्मरण रखना चाहीये कि इनका 'अरोड' नाम होने से 'रोडीकोट' स्थान का नाम पड़ा, रोडीकोट में आने से अरोड़ नाम नहीं पड़ा। नगर जो बसता है उसका नाम किसी पुरुष के नाम से होता है जैसे लवपुर; लक्ष्मणपुर, ययातिपत्तनः इत्यादि। नगर के नाम से जाति का नाम प्रायः नहीं हुआ करता।

बहुत विदेशीय ऐतिहासिकों का विचार है कि आज कल जितने लोग अपने आपको क्षत्रिय कहते हैं उनमें से कोई भी असली क्षत्रिय नहीं हैं, असली क्षत्रियों को नष्ट हुए बहुत दिन हुए उनके वंश में से कोई भी न रहा। इस पुस्तक को आद्योपान्त देखने से विदित होजावेगा कि असली क्षत्रियों में से कम से कम यह निश्चयपूर्वक कहा जासक्ता है कि अरोड़ (ओड्र) जाति आज तक पृथिवी पर वर्तमान है। यह लोग उस चन्द्र वंश में से हैं। कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन की जो सन्तति हुई उनका नाम परशुराम के समय में पूर्वोक्त कारणों से ओड्र या अरोड़ पड़गया। पुस्तक में दिये हुए वंश परम्परा को देखने से ज्ञात होजावेगा कि यह 'ओड्र' या 'अरोड़' चन्द्र वंश में से किस प्रकार हैं?

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

अरोड़वंशावलि

चन्द्र
बुध
पुरूरवा
आयु श्रुतायु सत्यायु रय विजय जय
नहुष क्षत्रवृद्ध रजि रम्भ अनेना
यति ययाति संयाति आयति वियति कृति
यदु
सहस्रजित् क्रोष्टा अनल अरिपु
शतजित्
महाहय वेणुहय हैहय
धर्म
नेत्र
कुन्ति
सोहंजति
महिष्मान्
भद्रसेनक
दुर्मद धनक
कृतवीर्य कृताग्नि कृतवर्मा कृतौजा
अर्जुन
जयध्वज शूरसेन वृषभ मधु ऊर्जित (शेष युद्ध में हत हुए)